ISSN 2348-3857

स्वामी विवेकानन्द का भारतीय शिक्षा दर्शन में योगदान

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

डॉ. विष्णु कुमार

सहायक आचार्य

शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ, नागौर (राजस्थान)

शोध सारांश

किसी भी व्यक्ति का चरित्र केवल उसकी प्रवृत्तियों का समग्र उसके मानस के झुकाव का समग्र है, जैसे-जैसे सुख और दुःख उसकी आत्मा के सामने आते हैं, वे उस पर विभिन्न चित्र छोड़ जाते हैं'' और इन संयुक्त संस्कारों के परिणाम को ही मनुष्य का चरित्र कहा जाता है। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों ने प्राचीन काल से ही शिक्षा में धार्मिक और आध्यात्मिक तत्व पर जोर दिया है फिर विवेकानद तो स्वामी और महात्मा ही थे। भारत के सन्तों की परम्परा में उनका अद्वितीय स्थान है और देश के बाहर उनको जो ख्याति मिली उसका दूसरा उदाहरण नहीं है। विवेकानन्द ने धार्मिक शिक्षा पर विशेष तौर से जोर दिया है। पश्चिम के विज्ञान का समर्थन करते हुए भी वे धर्म शिक्षा आवश्यक मानते हैं, क्योंकि मूल रूप से दोनों का आधार एक ही है। उन्होंने तो यहां तक कह दिया है कि विभिन्न विज्ञानों के शिक्षण के साथ-साथ ही और उन्ही के माध्यम से धर्म की शिक्षा भी दी जा सकती है। उनको अपने शब्दों में ''आधुनिक विज्ञान की सहायता से उनके ज्ञान को जगायें। उनका इतिहास, भूगोल, विज्ञान और साहित्य की शिक्षा दीजिए और उनके साथ-साथ इनके माध्यम से धर्म के मान सम्मान बताइये।

संकेताक्षर : *अन्तर्निहित पूर्णता, प्रशिक्षण, स्त्री शिक्षा, गुरुकुल प्रथा*

महापुरुषों का जीवन उस संगीत के समान है जिसके समाप्त होने पर उसकी धुन गूंजती है। श्रीकृष्ण ने गीता में यही कहा -''धर्म का ह्रास तथा पाप की प्रबलता होने पर मैं मानव जाति के कल्याण हेतु अवतार लिया करता हूँ। नाशवान जगत में सर्वत्र पाप की वृद्धि या संस्कार के नवनिर्माण की आवश्यकता होने पर सच्चे सुधारक और पथ प्रदर्शक प्रकट हुए, जिनके आत्मबल ने सामयिक परिस्थिति पर विजय पाई तथा अल्प समय में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक विजय पताका फहराई। देश में पुन: वह चमत्कार घटित हुआ, जिसने भारतवर्ष तथा भारतीय संस्कृति को आज तक जीवित रखा। आज फिर समुद्र मन्थन जैसा वातावरण चल रहा है, मानवीय चेतना का मन्थन होकर विष निकल रहा है, मानव की कमजोरी, निर्बलता और संकुचित मनोवृति का विष सामने आ रहा है, ऐसे में भगवान शंकर जैसे महापुरुष की आवश्यकता है कि प्रजातन्त्र के हर व्यक्ति का विषपान कर, समुद्र मन्थन से निकले रत्न और अमृत मानव जाति के सामने रखें। गुलामी तथा परतंत्रता के कारण भारतीय जनमानस अत्यन्त हताश, चेतनाहीन और मृत प्राय हो गया था और अपनी अस्मिता खो बैठा था।

अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति से सम्पूर्ण भारत पर अपना आधित्य स्थापित कर लिया था। राजनैतिक वर्चस्व के साथ-साथ अपनी भाषा ओर संस्कृति का प्रभाव भी छोड़ रहे थे। हिंदू अपने कर्म-काण्डों, रूढ़ियों तथा परम्पराओं में फंसे अपने को निरुपाय तथा निस्सहाय महसूस कर रहे थे। भारतीय जनता अपने को भ्रमित महसूस कर रही थी, उसे यह समझ में नहीं आ रहा था कि भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ है या पाश्चात्य संस्कृति। गुलामी के कारण भारतीय जनता, अपने धर्म, पराक्रम, शौर्य तथा कर्त्तव्य को भी भूल चुके थे। हम अपने पूर्वजों की धार्मिक तथा सांस्कृतिक धरोहर को भूल चुके थे। हमारी संस्कृति कितनी उदात्त तथा भव्य है इससे भी हम अपरिचित थे। स्वामी विवेकानन्द पहले व्यक्ति है जिन्होंने भारत की निर्जीव तथा मृतप्राय जनता में नए प्राण फूंके और ''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्त बोधत'' का उद्घोष किया। इस दिव्य संदेश से स्वामी जी ने भारतीय जनता को झकझोर दिया और जागरण का मंत्र फूंका। हिन्दू धर्म के उदात्त तथा प्रगतिशील विचारों को

प्रचलित कर भारत की कीर्ति पताका को विश्व रंगमंच पर फहराया और भारतवासियों के स्नदय सम्राट बने। भगवान बुद्ध, महावीर स्वामी, शंकराचार्य, संत ज्ञानेश्वर, कबीर तथा तुलसी आदि ने जो अद्वितीय कार्य किए, उसी परम्परा की एक घड़ी के रूप में स्वामी जी भारतीय जनता के सम्मुख आए।

स्वामी विवेकानन्द का दर्शन था-वेदान्त का अर्थ है जीवन और जगत के सम्बन्ध में उस अन्तिम सत्य को जानना ताकि ज्ञान की प्राप्ति जिसके द्वारा सांसारिक बन्धन कटते है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। स्वामी जी एक ईश्वर में विश्वास रखते थे किन्तु इसके लिए अनेक देवताओं को अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं समझते थे। उनका विचार था कि मनुष्य के शरीर, आत्मा ओर मस्तिष्क को सबल बनाए रखना आवश्यक है। वे मनुष्य में ही ईश्वर के दर्शन करते थे तथा मानव-सेवा को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे। इनका प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा था यदि तुम अपने भाई का सम्मान नहीं करते, जो ईश्वर की अभिव्यक्ति है तो तुम अनाभिव्यक्त ईश्वर की पूजा कैसे कर सकते हो। यदि तुम मनुष्य के दर्शन द्वारा ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकते तो तुम उसे बादलों में, मूर्तियों में, मृत पदार्थों में और अपनी बुद्धि की संकुचित कल्पनाओं में कैसे कर सकते हो? मैं तुम्हें उसी दिन से धार्मिक समझने लगूंगा जिस दिन से तुम पुरुषों और स्त्रियों में, ईश्वर के दर्शन करने लगोगे। ईश्वर सर्वशक्तिमान, निराकार और एक है। स्वामी विवेकानन्द इसी वेदान्त दर्शन के पक्के अनुयायी थे वे ईश्वर को तीन रूपों में देखते थे उनके अनुसार ईश्वर अनन्त, अस्तित्व, अनन्तज्ञात एवं अनन्त आनन्द स्वरूप है। ये तीनों एक ही रूप हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म में आस्था रखनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा

स्वामी जी के विचार वेदान्त पर आधारित होने के कारण उनका मानना है कि ज्ञान वास्तव में व्यक्ति के अन्दर निहित है। केवल अविद्या के कारण ही व्यक्त नहीं हो पाता या व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता है। उनके विकासवादी विचारों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की गतिपूर्णता प्राप्ति की ओर है। उन्होंने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि, शिक्षा व्यक्ति में पहले से विद्यामान अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।

स्वामी जी का विचार है कि बालक स्वयं अपनी पूर्णता की अभिव्यक्ति की तरफ विकासमान है। हमारा कार्य उसे सुरक्षा प्रदान करना है तथा उसके विकास की बाधायें दूर करना है। उनका विचार है कि व्यक्ति का विकास उसकी आन्तरिक शक्ति से स्वयं होता है। विकास की तुलना उन्होंने पानी के बहाव से की है जिस प्रकार मेढ़ काटने से पानी एक खेत से दूसरे खेत में जाता है उसी प्रकार बाधाएं दूर करने से व्यक्ति का विकास पूर्णता की ओर होता है। यहां ध्यान देने योग्य है कि पानी का स्थानान्तरण उसके स्वभाव के कारण हो रहा है न कि मेढ़ हटने से, मेढ़ तो उसके स्वाभाविक गति में बाधा थी। फ्रोबेल के समान ये भी बालक की तुलना पौधे से करते है जो नैसर्गिक शक्ति से ही बढता है। कहीं-कहीं स्वामी जी के विचार प्रकृतिवादियों से मिलते-जुलते है। स्वामी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में बालक की प्रकृति महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उन्होंने कहा कि ज्ञान बाहर से नहीं आता बल्कि वह तो मनुष्य के भीतर ही होता है। इस अन्तर्निहित ज्ञान अथवा पूर्णता की अभिव्यक्ति करना शिक्षा है। लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार का ज्ञान मनुष्य के मन में पहले से ही विद्यमान रहता हैं उस पर पडे आवरण को हटा देना ही शिक्षा है। अत: शिक्षा द्वारा मनुष्य के अन्तर्निहित ज्ञान की अभिव्यक्ति करनी चाहिए। स्वामी जी लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये स्वस्थ शरीर की आवश्यकता समझते थे। उनका कहना था कि हमें ऐसे बलिष्ठ लोगों की आवश्यकता है जिनकी पेशियां लोहे के समान दृढ़ हों और स्नायु फौलाद की तरह कठोर। उनके विचारानुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक विकास करना है। उन्होंने भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उसका बौद्धिक पिछड़ापन बताया। कमी को दूर करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि शिक्षा द्वारा बालकों का मानसिक तथा बौद्धिक विकास किया जाये, ताकि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें और मानसिक एवं शारीरिक विकास के साथ उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण भी बताया है इसके लिये उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने का सुझाव दिया। ऐसा करने से व्यक्ति मन, वचन और कर्म से पवित्र है उसमें प्रबल बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियां उत्पन्न होती हैं जिसके द्वारा उसके चरित्र-गठन में सहायता मिलती है। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति उस सत्य अथवा धर्म को मालूम कर सके जो उसके अन्दर छिपा हुआ है। इसके लिये उन्होंने मन तथा हृदय के प्रशिक्षण पर बल दिया और बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा बालक में आज्ञा-पालन, समाज-सेवा एवं महात्माओं के अनुकरणीय आदर्शों को अपनाने की क्षमता का विकास हो सके। शिक्षा ऐसी हो जो प्रत्येक मनुष्य को पूजा-पाठ करने के लिये प्रेरित करे, जिससे वह अपने जीवन को पवित्र बना सके। अत: सत्य एवं सनातन तत्वों को जनता के सामने रखना उन्हें समझाना, उनका विकास करना शिक्षा का उद्देश्य है।

स्वामी जी ने शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य बालकों में देश प्रेम की भावना का विकास करना बताया। उनका विचार है कि जो शिक्षा देशभक्ति की प्रेरणा नहीं देती वह राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कही जा सकती। भारत एक निर्धन देश है तथा यहां की अधिकांश जनता मुश्किल से ही अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाती है। स्वामी जी ने इस तथ्य एवं सत्य को स्रदयगम किया तथा यह अनुभव किया कि कोरे आध्यात्म से ही जीवन नहीं चल सकता। जीवन चलाने के लिए कर्म अत्यधिक अनिवार्य है। इसके लिये उन्होंने शिक्षा के द्वारा मनुष्य को उत्पादन एवं उद्योग कार्य तथा अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा द्वारा विभिन्नता में एकता की खोज की जानी चाहिए, उनका कहना था कि सांसारिक जगत तथा आध्यात्मिक जगत एक ही है और विभिन्नता की अनुभूति दोष अथवा माया है। अत: शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसके द्वारा बालक विभिन्नता में एकता का अनुभव करने लगे। स्वामी जी ने जीवन पर्यन्त इस बात पर बल दिया कि अपने ऊपर विश्वास रखना, श्रृद्धा तथा आत्मत्याग की भावना को विकसित करना शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। उन्होंने कहा कि - ''उठो! जागो और उस समय तक बढ़ते रहो जब तक कि चरम उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाये।''स्वामी जी के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने की एकमात्र विधि है एकाग्रता। जितनी अधिक एकाग्रता की शक्ति होगी, उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। यहां तक कि जूतों की पांलिश करने वाला भी एकाग्रता से अच्छी पॉलिश कर सकेगा, और रसोइया भी एकाग्रता के द्वारा अधिक अच्छा भोजन बना सकेगा। एकाग्रता के अलावा अनाशक्ति की शक्ति भी अत्यन्त प्रबल है।

स्वामी जी के अनुसार गुरुकुल प्रथा शिक्षक-शिष्य सम्बन्धों के लिए सर्वथा अनुकूल है। वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल उसमें संशोधन करके गुरुकुल प्रथा की पुनर्रचना करने की वे सलाह देते हैं - मैंरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है गुरुकुलवास। शिक्षक के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा हो ही नही सकती। जिनका चरित्र ज्वलन्त अग्नि के समान हो, ऐसे व्यक्ति के सहवास में शिष्य को बाल्यावस्था के आरम्भ से ही रहना चाहिए, जिससे कि उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श छात्र के सामने रहे। हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता रहा है।' स्वामी जी का दृढ़ विश्वास है कि चरित्रवान गुरु के आदर्श जीवन के अनुकरण द्वारा ही बालक का अन्त:सुप्त देवत्व जाग्रत किया जा सकता है। वे लिखते हैं यदि देश के बच्चों को शिक्षा का भार फिर से त्यागी ओर नि:स्पृह व्यक्तियों के कन्धों पर नहीं आता तो भारत को दूसरों की पादुकाओं को सदा के लिए अपने सिर पर ढ़ोते रहना होगा। स्वामी जी छात्र-आयु में ब्रह्मचर्य पालन पर जोर देते हैं। उनके मतानुसार इस अवस्था में बालकों को मन, वाणी और कर्म से ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए। इससे संकल्प-शक्ति दृढ होती है, आध्यात्मिक शक्ति का उदय होता है, सूक्ष्म तत्वों को समझने एवं हृदयगम करने की मेघा उत्पन्न होती है तथा वाग्मिता आदि शक्तियों का विकास होता है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा प्रत्येक बालक का जन्मसिद्ध अधिकार है किसी भी राष्ट्र की उन्नति उस राष्ट्र की जनता की शिक्षा में निहित है। उन्होने कहा ''कोई देश उसी अनुपात में विकास करता है, जिस अनुपात में वहां की जनता में शिक्षा और बुद्धि का विकास होता है।'' देश के पुनरुत्थान के लिए जनसाधारण की शिक्षा को स्वामी जी अनिवार्य मानते हैं ''मेरे विचार में जनसाधारण की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप और हमारे पतन का कारण है जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर से शिक्षा, अच्छा भोजन, और अच्छी सुरक्षा नहीं प्रदान की जायेगी, तब तक सर्वोतम राजनैतिक कार्य भी व्यर्थ होंगे। स्वामी जी के अनुसार प्रत्येक बालक में अनन्त ज्ञान अन्तर्हित है वह अनन्त ज्ञान की निधि है। शिक्षा द्वारा बाहर से कोई ज्ञान आरोपित नहीं किया जा सकता। शिक्षक बालक में निहित ज्ञान का केवल अनावरण करता है। बालक के विकास अथवा उसकी प्रगति के लिए बल प्रयास नहीं करना चाहिए। निषेधात्मक विचार उन्हें दुर्बल बना देते हैं। विद्यार्थी की शिक्षा उसकी आन्तरिक आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए।

स्वामी जी कहते है कि - ''पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षित करो, तब वे तुम्हें बतायेगी कि उनके लिए कौन से सुधार आवश्यक है।'' स्वामी जी शिक्षा की सुविधा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध कराना चाहते हैं। दरिद्रता में शिक्षा प्राप्त करने की सम्भावना ओर बढ़ जाती है। स्वामी जी ने कहा है - ''संसार के महान चरित्रवान! व्यक्तियों के अध्ययन से मैं यह कह सकता हूं कि अधिकांश में सुख की अपेक्षा दु:खपूर्ण स्थितियों ने ही उन व्यक्तियों को महान बनाया। वह गरीबी थी, जिसने सम्पन्ता की तुलना में उन्हें अधिक सीखने का अवसर दिया। वे निंदा के झोंके थे, जिन्होंने प्रशंसा की तुलना में उनके स्रदयगत तेज को प्रकट किया। प्रत्येक देश की कुछ सांस्कृतिक विशेषता होती है, जो पाठ्यक्रम-निर्माण का धरातल प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति का आधार आध्यात्म है और इससे रहित कोई पाठ्यक्रम सार्थक नहीं हो सकता है। जीवन को परिपूर्ण बनाने के लिए शिक्षा का आधार आध्यात्मिक होना चाहिए। हमारी शिक्षा, बुद्धि ओर हमारे विचार पूर्णत: आध्यात्मिक हैं और वे सभी धर्मों में अपनी पूर्णता पाते हैं।'' स्वामी जी अध्ययन को तपस्या मानने

के साथ-साथ, हिन्दुओं की ध्यानोन्मुखता को वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि में सहायक समझते हैं। स्वामी जी के अनुसार धर्म, शिक्षा की आत्मा है, परन्तु धर्म की उनकी परिभाषा बड़ी व्यापक है। किसी सम्प्रदाय-विशेष को धर्म की संज्ञा देना वे उचित नहीं मानते। उनकी दृष्टि में धर्म एक साधना है, एक अनुभूति है, आत्म साक्षात्कार है। स्वामी जी धर्म निरपेक्ष पाठ्यक्रम की कल्पना भी नहीं करते। हृदय की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम में धर्म को उचित स्थान प्रदान करना आवश्यक है। धर्म की शिक्षा पाठ्यक्रम के अन्य विषय मन तथा बुद्धि का परिष्कार करते हैं, परन्तु धर्म स्रदय को समुनत करता है। वे लिखते हैं, ''अत्यधिक मानसिक प्रशिक्षण से अधर्मी मनुष्यों का निर्माण होता है। पाश्चात्य शिक्षा का एक दोष है यह मनुष्य को अत्यन्त स्वार्थी बना देती है। बुद्धि व्यक्ति को उस सर्वोच्च स्तर पर नहीं पहुंचा सकती है, जिस पर हृदय उसे पहुंचाता है। हृदय ज्ञान का प्रकाश है अत: हृदय का परिष्कार करो। ईश्वर हृदय के माध्यम से ही हमें संदेश देता है।'' उन्होंने मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा के साथ शरीर की शिक्षा को समान महत्व दिया। वे आध्यात्मिक बल के साथ-साथ शारीरिक बल को भी आवश्यक मानते हैं। उन्होंने वार्तालाप में अपने एक छात्र से कहा था, तुम्हें शरीर शक्तिशाली बनाने की विधि जाननी चाहिए और उसकी शिक्षा दूसरों को भी देनी चाहिए। क्या तुम मुझे अभी भी प्रतिदिन डम्बेल्स के साथ व्यायाम करते हुए नहीं देखते? शरीर और मन दोनों को समान रूप से शक्तिशाली बनाना होगा। युवकों के सम्मुख भाषण देते हुए एक बार उन्होंने यहाँ तक कहा कि गीता का मर्म समझने के लिए भी शारीरिक शक्ति आवश्यक है। ''शक्ति ही जीवन और कमजोरी मृत्यु है शक्ति परम सुख है और अजर-अमर जीवन है, कमजोरी कभी न हटने वाला बोध और यन्त्रणा है, कमजोरी ही मृत्यु है.....मेरे तरूण मित्रों! शक्तिशाली बनो, मेरी तुम्हें यही सलाह है। तुम गीता के अध्ययन की अपेक्षा फुटबाल के द्वारा स्वर्ग के अधिक समीप पहुंच सकोगे। तुम्हारे स्नायु और मांसपेशियों अधिक मजबूत होने पर तुम गीता अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे। तुम अपने शरीर में शक्तिशाली रक्त प्रवाहित होने पर श्रीकृष्ण के तेजस्वी गुणों और उसकी अपार-शक्ति को अधिक समझ सकोगे। जब तुम्हारा शरीर मजबूती से तुम्हारे पैरों पर खड़ा रहेगा और तुम अपने को मनुष्य अनुभव करोगे, तब तुम उपनिषद और आत्मा की महानता को अधिक अच्छा समझ सकोगे।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुशासन का अर्थ है अपने व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना। अनुशासन के सम्बन्ध में उनके विचार प्रकृतिवाद से मिलते-जुलते हैं। उनका कहना था कि बालक को स्वानुशासन सीखना चाहिये। उन्हें स्व-अनुशासन की शिक्षा दी जानी चाहिये तथा उन पर अनुचित दबाव भी नहीं डालना चाहिये बल्कि उन्हें सीखने के लिये पर्याप्त स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। उन्हें सहानुभूतिपूर्वक सीखने के लिये उत्साहित करना चाहिये। वे शिक्षा को व्यापार बनाने के विरूद्ध थे केवल शुल्क देने मात्र से ही किसी व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वर्तमान काल में विद्यार्थियों के मस्तिष्क में यह विचार घुस गया है कि वे शुल्क देते है इसलिए उन्हें शिक्षा पाने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध बिगड़ने जा रहे है। विद्यालयों में अनुशासनहीनता की समस्या बढ़ती जा रही है। भारतीय परम्परा के अनुसार विवेकानन्द गुरु-शिष्य के सम्बन्धों को अधिक घनिष्ठ बनाना चाहते है। शिक्षक का व्यक्तिगत जीवन जितना ही ऊँचा होगा, शिक्षार्थियों पर उसका उतना ही अधिक प्रभाव पडेगा। प्राचीन भारतीय परम्परा में ऋषि-मुनि शिक्षा देने का काम करते थे। विवेकानन्द के अनुसार शिक्षक की सबसे पहली योग्यता आत्मत्याग है उसे बिना किसी बदले की भावना से ज्ञान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। प्राचीन भारतीय पम्परा में शिष्य गुरु की हर सम्भव सेवा करता था और उसके लिए भिक्षा मांग कर लाता था। विद्यालय गुरुकुल कहलाते थे ओर गुरुकुल में विद्यार्थी घर की तरह रहते थे। विवेकानन्द भारतवर्ष में गुरुकुल प्रणाली के आधार पर शिक्षा व्यवस्था चलाने की राय देते थे। वे गुरु गृह प्रणाली के पक्षधर थे वे यह अनुभव करते थे कि आधुनिक परिस्थितियों में विद्यालय प्रकृति की गोद में शहर के कोलाहल से दूर नहीं बसाये जा सकते। अत: आपने केवल इस बात पर बल दिया कि विद्यालय का पर्यावरण शुद्ध होना चाहिए और वहां अध्यापक-अध्यापन, खेल-कूद व्यायाम के अतिरिक्त भजन-कीर्तन एवं ध्यान की क्रियायें भी सम्पन्न कराई जायें। प्राचीन भारतीय परम्परा में स्त्री-पुरुषों में कोई ऊँच-नीच नहीं माना गया है वे दोनों परस्पर पूरक माने गये हैं। उपनिषदों के काल में स्त्रियों ने दर्शन और गणित जैसे विषयों पर ख्याति प्राप्त की थी।

विवेकानन्द ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के इस ऊँचे आदर्श के होते हुए भी आज हम स्त्री-पुरुष में भेदभाव कर रहे हैं। उन्होंने स्त्रियों की हीन दशा की ओर ध्यान आकर्षित किया और स्त्रियों को फिर से आगे बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया। वे नारी को शक्ति का अवतार मानते थे। जिसको सब प्रकार से सम्मान किया जाना चाहिए। वे इस सिद्धान्त को मानते थे ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र देवता रमयन्ते'' भारतीय दर्शन में नर-नारी ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं। विवेकानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा, कि जो देश अपनी स्त्रियों का सम्मान नहीं

कर सकता, वह कभी आगे नहीं बढ़ सकता। इस सम्बन्ध में उन्होंने अमरीका का उदाहरण दिया और यह कहा कि वहां पर स्त्रियों के इतने अधिक सम्मान के कारण ही वह देश आज इतना आगे बढ़ सका है। स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए एक मात्र उपाय शिक्षा है। शिक्षा से ही उनमें आत्म विश्वास उत्पन्न होगा और वे स्वयं अपनी सहायता कर सकेंगी।

गुरु गोविन्द सिंह ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना रक्त बहाया, रणक्षेत्र में अपने लाडले बेटों को बलिदान होते देखा। यदि तुम अपने देश का कल्याण करना चाहते हो तो तुम में से प्रत्येक को गुरु गोविन्द सिंह बनना होगा। भले ही तुम्हें अपने देशवासियों में सहस्त्रों दोष दिखाई दें, पर ध्यान रखना कि उनमें हिन्दू रक्त है। यदि वह तुम्हें धक्का देकर बाहर कर दे तब भी कहीं दूर जाकर उस शक्तिशाली सिंह के समान मृत्यु की गोद में चुपचाप सो जाना। ऐसा ही व्यक्ति हिन्दू कहलाने का वास्तविक अधिकारी है, यही आदर्श सदैव हमारे सामने रहना चाहिए। आओ हम अपने समस्त विवादों एवं आपसी कलह को समाप्त कर स्नेह की इस भव्यधारा को सर्वत्र प्रवाहित कर दें। शिक्षा आत्मविकास की प्रक्रिया है। बालक स्वयं अपने को शिक्षित करता है विवेकानन्द के शब्दों में जिस तरह से आप एक पौधा नहीं उगा सकते, उसी तरह आप किसी बालक को शिक्षा नहीं दे सकते। पौधा स्वयं अपनी प्रकृति को विकसित करता है। परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि शिक्षा में शिक्षक का कोई महत्व नहीं होता? शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक का महत्व बालक को आत्मविकास के मार्ग की बाधाओं को दूर करने में है। जिस तरह माली का काम जमीन को ठीक करना, पौधे की देखभाल करना और उसके बचाव के लिए प्रबन्ध करना समय-समय पर उसको पानी देना है उसी प्रकार शिक्षक का कार्य बालक की देखभाल रखना और उसको ऐसा परिवेश प्रदान करना है जिसमें उसका समुचित विकास हो सके। यह ठीक है कि ज्ञान का स्रोत स्वयं बालक में उपस्थित है किन्तु शिक्षक ही उसको जगाता है। शिक्षक का कार्य यह है कि वह बालक-बालिकाओं को अपने हाथ-पैरों, इन्द्रियों और बुद्धि का प्रयोग के लिए उकसाये।

स्पष्ट है कि विवेकानन्द शिक्षा में किसी प्रकार का बाहरी दबाव नहीं चाहते क्योंकि इसमें बालकों की स्वतन्त्रता में व्याघात पहुंचता है। शिक्षकों अथवा माता-पिता को बालकों पर अनावश्यक दबाव नहीं डालना चाहिये और उनके विकास को उन्मुक्त छोड़ देना चाहिये। स्वतन्त्रता, प्रेम और सहानुभूति के परिवेश में बालक साहस और आत्म विकास का पाठ सीखेगा, अन्यथा वह दब्बू बन जायेगा। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षकों को पूजा की भावना से शिक्षण का कार्य करने का उपदेश किया है अन्य समकालीन शिक्षा-दार्शनिकों के समान वे भी मानव-सेवा को ईश्वर-साक्षात्कार का सबसे अच्छा साधन मानते हैं उनका लक्ष्य मानव-मात्र में भ्रातृत्व की स्थापना था और शिक्षा लक्ष्य की प्राप्ति करने का एक साधन था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नन्द किशोर, डॉ. शर्मा, भारतीय दार्शनिक समस्याएं, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2. नन्द किशोर, देवराज, भारतीय दर्शन, लखनऊ
3. मंजूमदार, सत्येन्द्रा नाथ, स्वामी व्योमरूपानन्द, रामकृष्णमठ, धन्तोली, नागपुर
4. सुशील कुमार, युग पुरुष विवेकानन्द, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली
5. आर.आर. रस्क, शिक्षा के दार्शनिक आधार
6. सुख्या, एस.पी. मेहरोत्रा, पी.वी. महरोत्रा, आर.एन., शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
7. विवेकानन्द साहित्य संचयन, संस्करण 1, 2, 3
8. योगमणी, डॉ. निरंजन सिंह, प्राचीन भारत का साहित्यक एवं सांस्कृतिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, उदयपुर